तूफान से लड़ना ओडिशा से सीखें

हरि कुमार, जेफरी जेट्लमैन, समीर यासिर

© The New York Times 2019

फैनी की चेतावनी जारी होते ही ओडिशा सरकार ने पिछले तूफानों से सबक लेते हुए करीब दस लाख लोगों को सुरक्षित जगह भेजा। विकासशील देश के एक गरीब राज्य द्वारा तूफान का मुकाबला करने की यह उपलब्धि बहुत बड़ी है। बीस साल पहले की तुलना में यह एक बड़ा बदलाव है, जब ओडिशा में आए तूफान से हजारों लोग मारे गए थे।

उड़ानें रद्द कर दी गईं। ट्रेन सेवा रोक दी गई। कई वर्षों के बाद भीषण चक्रवाती तूफान उस ओडिशा में आ रहा था, जो भारत के सबसे गरीब राज्यों में एक है और जहां लाखों लोग निचले समुद्रतटीय इलाकों में मिट्टी और बांस से बनी झोपड़ियों में रहते हैं। पर भारत के पूर्वी इलाके में स्थित ओडिशा के सरकारी कर्मचारी चुपचाप खड़े नहीं थे। लोगों को तूफान की भयावहता की चेतावनी देने के लिए उनके लिए जो कुछ भी संभव हो सकता था, वह उन्होंने किया-उन्होंने 26 लाख टेक्स्ट मैसेज किए, 43,000 स्वयंसेवक और करीब 1,000 आपातकालीन कार्यकर्ता तैनात किए, टेलीविजन पर और बसों में जानकारी देकर, तटीय इलाकों में सीटी बजाकर, पुलिस अधिकारियों को जिम्मेदारी देकर और स्थानीय भाषाओं में लाउड स्पीकर के जरिये घोषणा कर लोगों को लगातार बताया जाता रहा कि 'तूफान आ रहा है, सुरक्षित इलाकों में जाएं।'

ऐसा लगता है कि इसका व्यापक असर हुआ। चक्रवाती तूफान फैनी शुक्रवार की सुबह 120 मील प्रति घंटे की रफ्तार से ओडिशा के समुद्र तट पर दाखिल हुआ। पेड़ उखड़ गए और तटीय इलाकों में अनेक झोपड़ियां ध्वस्त हो गईं। वह तूफान भीषण रूप ले सकता था। पर शनिवार की सुबह को साफ हो गया कि खतरा टल गया है। नुकसान का पूरा ब्योरा तो अभी स्पष्ट नहीं है, पर खबरें तूफान से निपटने की सफलता के बारे में ही बताती हैं। ऐसा लगता है कि खतरे की पूर्व चेतावनी के कारण सबसे कमजोर लोग बच गए।

विशेषज्ञों का कहना है कि विकासशील देश के एक गरीब राज्य के लिए तूफान का मुकाबला करने की यह उपलब्धि बहुत बड़ी है। सरकार ने पिछली त्रासदियों से सबक लेते हुए काफी तेजी से लगभग दस लाख लोगों को संवेदनशील इलाकों से सुरक्षित जगहों में भेजा। एक पूर्व नौसेनाधिकारी और ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन के प्रमुख अभिजीत सिंह कहते हैं, 'बहुत कम लोगों ने इतनी सांगठनिक कुशलता की उम्मीद की थी। यह एक बड़ी सफलता है।' इस तूफान का असर पड़ोस के बांग्लादेश में भी दिखा। पर वहां भी समय पर करीब दस लाख लोगों को

संवेदनशील इलाकों से निकालकर सुरक्षित जगहों पर पहुंचाते हुए नुकसान की आशंका खत्म कर दी गई।

बीस साल पहले की तुलना में यह एक उल्लेखनीय बदलाव है, जब इन्हीं इलाकों में आए एक तूफान ने गांवों को ध्वस्त कर दिया था, जिसमें हजारों लोग मारे गए थे। उस समय अनेक लोग अपने घरों से बाहर निकल भी नहीं पाए थे और मारे गए थे। तब अनेक लोगों की लाशें उनके घर से कई किलोमीटर दूर पाई गई थीं, जो उस तूफान की भयावहता के बारे में ही बताती थी। उसके बाद ओडिशा सरकार ने प्रशासन के साथ मिलकर प्रण लिया कि आगे ऐसे प्राकृतिक दुर्योग को पूरी ताकत और तैयारी के साथ विफल किया जाएगा। 'हमने गंभीरता के साथ यह ठाना है कि तूफान में एक भी आदमी की जान नहीं जाने दी जाएगी। यह एक दिन या एक महीने का काम नहीं है, यह बीस साल की तैयारी का नतीजा है,' विष्णुपद सेठी कहते हैं, जो ओडिशा के वरिष्ठ राहत आयुक्त हैं।

1999 की त्रासदी के बाद ओडिशा में जो पहला काम किया गया, वह था तटीय इलाकों में सैकड़ों साइक्लोन शेल्टर्स का निर्माण। आईआईटी, खड़गपुर द्वारा डिजाइन किए गए ये पक्के भवन इस तरह बने हैं कि तूफान इनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। इन भवनों में ग्राउंड फ्लोर पर अमूमन कमरे नहीं होते। इन भवनों के खंभे बेहद मजबूती से बनाए जाते हैं और दूसरी मंजिल पर बने कमरों में अनेक खिड़कियां होती हैं, पर कपाट नहीं होते, ताकि हवा इन्हें कोई नुकसान न पहुंचा सके। ऐसे एक शेल्टर में अनेक लोग आश्रय ले सकते हैं। एक सप्ताह पहले ही मौसम विज्ञानी मौसम के बारे में सूचनाएं इकट्ठा करने लगे थे, जब इसने तूफान का रूप लिया भी नहीं था।

ओडिशा की आबादी 4.6 करोड़ है, जो स्पेन की जनसंख्या के बराबर है। पर ओडिशा में गरीबी बहुत है। राज्य की औसत आय पांच डॉलर रोज से भी कम है और ज्यादातर लोग किसान हैं। फैनी के आने से पहले सरकारी अधिकारियों ने तटीय इलाके की सभी झोपड़ियों और वहां रहने वाले बुजुर्गों और बच्चों की सूची बनाई तथा लोगों को सुरक्षित जगहों पर पहुंचाया। ऐसे ही सभी आपातकालीन अधिकारियों को ऑपरेशन सेंटर्स में तैनात रहने का आदेश दिया गया। तटीय इलाकों के होटलों में रह रहे पर्यटकों को लौट जाने की सलाह दी गई, 300 पावर बोट्स और दो हेलीकॉप्टर का प्रबंध किया गया और सभी शेल्टर होम में खाने के पैकेट और बोतलबंद पानी की पर्याप्त आपूर्ति की गई। पुरी में अनेक दुकानें ध्वस्त हो गईं। भुवनेश्वर में चाय की दुकान चलाने वाले एसके बेहरा कहते हैं, 'प्रकृति गरीबों का अधिक नुकसान करती है। मैं मजबूर आदमी हूं। धीरे-धीरे मैं अपने जीवन को दोबारा पटरी पर ले आऊंगा।'

सुधीर विद्यार्थी

उदास चित्रकृति के रचयिता

हरिपाल त्यागी ख्यातिलब्ध चित्रकार, जाने-माने लेखक, कवि और एक समय कम्युनिस्ट पार्टी के होलटाइमर थे। पर उनका कलाकार इन सब पहचानों पर हावी था। बीड़ी सुलगाते हुए मुक्तिबोध का चित्र उनकी सर्वाधिक लोकप्रिय चित्रकृति थी। *मुक्तिबोध रचनावली* के मुखपृष्ठ पर छपकर उनकी यह रचना अमर कला संपदा बन गई। अपने चित्रों के एक किनारे वह सिर्फ 'हरिपाल' लिखा करते थे, त्यागी नहीं। उनकी सुपरिचित हल्की दाढ़ी वाले चेहरे की शिनाख्त हर किसी की स्मृतियों में विद्यमान है। साधारण वेश भूषा और बेहद सरल स्वभाव। हंसी में अजब खुलापन। ऐसा, जो सामने वाले को सुवासित कर दे। बोली-बानी में कोई दुराव-छिपाव नहीं। उंगलियां और आंखें गोया किसी जादू से लबालब और छलक जाने को बेताब। उनसे मिलना हर बार किसी वाद्य के तरंगित होने जैसा अनुभव रहा होता।

हरिपाल त्यागी एक प्रतिबद्ध लेखक और कवि थे, जिसका पता कम लोगों को था। वह अपने लेखों और कविताओं में भी चित्रों का ही सृजन करते थे। उनके पास गजब का व्यंग्य था। उनकी दृष्टिसंपन्नता और तंज का सबसे बेहतर नमूना देखने को तब मिला, जब उन्होंने *महापुरुष* शीर्षक से लेखों को शृंखलाबद्ध किया। नामवर सिंह से लेकर अशोक वाजपेयी तक कोई उनकी कलम से अछूता नहीं रहा। उस शृंखला का अंतिम लेख *निम्नपुरुष* उन्होंने स्वयं को आर-पार देखते हुए अत्यंत संतुलित ढंग से उकेरा था। उनके सर्वश्रेष्ठ संस्मरणों में भाऊ समर्थ और राजेंद्र झा पर लिखे उनके दीर्घ निबंध हैं। त्यागी जी को चित्रों की रचना करते देखना एक विचित्र प्रकार का अनुभव था। हाथ में ब्रश और आंखें कैनवस पर। किसी चित्रकृति में रंग भरते हुए भी वह निरंतर किसी से बातें करते रह सकते थे। पर वह क्या रच रहे होते थे, यह जानना किसी के लिए भी बेहद कठिन होता। कल्पना की उनकी उड़ान पर आंखें टिका पाना एक जोखिम भरा काम था। मां और बच्चा, उदास किसान, कॉफी हाउस या फिर मिथक कथा उनके चर्चित चित्र थे। शीर्षकहीन चित्र में वह स्त्री, घोड़ा, बच्चा और एक चिड़िया है, पर उसे वह कोई नाम नहीं देते। वह अक्सर कहते थे कि जरूरी नहीं कि किसी चित्र को कोई शीर्षक दिया ही जाए। रंग और जीवन एक साथ बोलते हों, तो चित्र अपने आप आकर्षक हो जाते हैं। त्यागी जी के पास तैलचित्र थे, तो मिश्रित माध्यम के चित्रों का विशाल भंडार भी उनके पास था। इंक और एक्रेलिक से वह प्रकृति और जीवन को एक साथ उकेर सकते थे। लोक गायक, परंपरा, स्नान के लिए, दु:स्वप्न और हादसा-उनकी तूलिका से कुछ भी नहीं छूटता था। हादसा एक लगातार सिलसिला है, जिस पर त्यागी जी ने पूरी एक शृंखला तैयार की थी। खुशनुमा और चलती-फिरती जिंदगी के उजड़ जाने की खामोश कर देने वाली उनकी रेखाएं और रंग कला के साथ ही उनके विचार पक्ष का भी अद्भुत साक्ष्य हैं। मेरे दिवंगत पुत्र के यादनामा पर उन्होंने एक अद्भुत रेखांकन का सर्जन किया था, जिसमें अनंत में उड़ते राजहंस को पकड़ने के लिए मां-पिता के व्याकुल उठे हुए हाथ पाठक को शोकविद्ध कर देते हैं।

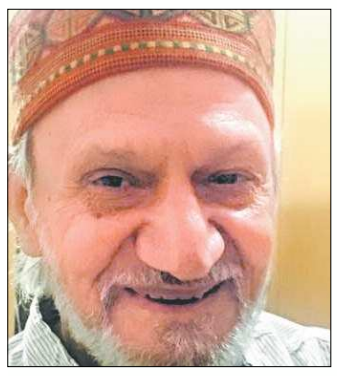

हरिपाल त्यागी इंक और एक्रेलिक से प्रकृति और जीवन को एक साथ उकेर सकते थे। लोक गायक, परंपरा, स्नान के लिए, दु:स्वप्न और हादसा-उनकी तूलिका से कुछ भी नहीं छूटता था। पर उनके चित्रों का मुख्य स्वर पीड़ा ही रहा।

त्यागी जी लेखकों के सर्वाधिक प्रिय चित्रकार थे। किसी साहित्यिक कृति का कवर डिजाइन यदि त्यागी जी ने बनाया, तो वह उस लेखक के लिए गौरव की बात होता था। उनके बहुचर्चित चित्रों में मैक्सिम गोर्की, ब्रेख्त और मुक्तिबोध के तैलचित्र हैं। कला की रूढ़ अवधारणाओं और फैशनेबल अकादमीय रास्तों से अलग खड़े त्यागी जी एक स्व-प्रशिक्षित कलाकार थे। उनके चित्रों की न जाने कितनी प्रदर्शनियां अनेक शहरों में लगीं और ढेर सारे चित्र प्रशंसित हुए। जिंदगी के लंबे संघर्ष में ही उन्होंने कला की समझ और शैली विकसित की। उनके चित्रों का मुख्य स्वर पीड़ा रहा। मैंने उनका ऐसा कोई चित्र नहीं देखा, जिसमें चेहरे हंसते और खिलखिलाते हों। हां, बच्चों की किताबों और पत्रिकाओं के लिए बनाए गए उनके रेखांकनों की दुनिया थोड़ी अलग है। वहां नन्हें-मुन्नों का अपना संसार पूरी सहजता और स्वाभाविकता के साथ उपस्थित रहता है।

त्यागी जी अंतिम समय तक प्रतिबद्ध और सचेत वाममार्गी चिंतक ही बने रहे। उनका नक्सलवादी रूझान बातचीत में बार-बार सामने आ जाता था। वह अद्भुत शैलीकार भी थे। उनके पास अत्यंत समृद्ध भाषा और अभिव्यक्ति का सरल और सचेत ढंग था। कुछ वर्ष पहले उन्होंने एक आत्मकथात्मक उपन्यास की भी रचना की और हंसराज रहबर की भांति हिंदी के अनेक 'महापुरुषों' को अपनी कलम से बेनकाब भी किया, पर वह रहबर की शैली से सर्वथा भिन्न प्रकृति का था। उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले के रहने वाले त्यागी कई दशक से दिल्लीवासी हो गए थे, पर दिल्ली न तो उनके भीतर थी और न ही वह दिल्ली के हो पाए। राजधानी के सादतपुर की गंवई बस्ती में नागार्जुन और विष्णु चंद्र शर्मा जैसे वरिष्ठ साहित्यकारों के बीच वह चित्रकार और साहित्यकार, दोनों की छवियों के साथ छियासी वर्ष की उम्र तक सर्वथा सक्रिय जीवन जीते रहे। उदास चित्रकृति के उस रचयिता को मैंने जिंदगी के किसी पल में कभी उदास नहीं देखा। उनकी चित्रकृतियां कभी विस्मृत नहीं होंगी।

देशभक्तों से मुलाकात

पैंतीस साल पहले दो पूर्व सैनिकों से मिलना मेरा सौभाग्य था, तो अभी ऐसे समय में उनके बारे में लिखना जरूरी लगा, जब तिरंगे के साथ ऐसे लोग खुद को जोड़ रहे हैं, जिन्हें बहुत कम पता है कि आखिर हमारे गणराज्य का निर्माण कैसे हुआ।

रामचंद्र गुहा
जाने-माने इतिहासकार

हम ऐसे भारत में रह रहे हैं, जहां सभी लोग मातृभूमि से अपने अटूट लगाव की घोषणा कर रहे हैं। सोशल मीडिया, टेलीविजन और खासतौर से चुनावी रैलियों में जोरशोर से राष्ट्रवाद, देशभक्ति इत्यादि के दावे किए जा रहे हैं। किसी के लिए किसी बहस को जीतने न सही, तेजी से खत्म करने का आसान तरीका है कि वह इस बात पर जोर दे कि बहस करने वाले की तुलना में वह भारत माता से कहीं अधिक प्रेम करता है।

मैंने अपनी पेशेवर जिंदगी का बड़ा हिस्सा ऐसे पुरुषों और महिलाओं के बारे में लिखने में व्यतीत किया है, जिन्होंने इस देश को बनाया है, ऐसे पुरुष और महिलाएं, जिन्होंने अपनी देशभक्ति को अपनी आस्तीनों में बांधकर दिखावा करने के बारे में कभी विचार नहीं किया। उनके शब्दों ने नहीं, बल्कि उनके कामों ने हमें बताया कि वे किस गहराई तक भारतीय थे। अन्य लोगों के साथ ही गांधी, नेहरू, पटेल, आंबेडकर, कमलादेवी चट्टोपाध्याय और डॉ एम ए अंसारी के जीवन पर शोध करना और यह जानना सौभाग्य की बात है कि कैसे उन्होंने इस पदानुक्रमित और विभाजित भूमि को एक लोकतांत्रिक गणराज्य में बदल दिया। मेरा यह कॉलम भी देशभक्तों के साथ मेरी मुलाकातों पर केंद्रित है, जिनसे मैं अभिलेखागारों में नहीं, बल्कि रूबरू होकर मिला। 1980 के दशक की शुरुआत में मैं जब चिपको आंदोलन के मूल गढ़वाल हिमालय पर शोध कर रहा था, तब मैंने बड़ियार घाटी में घूमकर अपने शोध के लिए जमीनी काम किया था, जहां वाणिज्यिक वानिकी के उत्पीड़न के खिलाफ एक बड़ा चिपको प्रदर्शन हुआ था। मैंने इस आंदोलन में हिस्सा लेने वाले पुरुषों और महिलाओं से बात की और उन्होंने वहां जो कुछ किया और कहा उसे अपने शोध में दर्ज किया। बाद में यही शोध मेरी पहली किताब के रूप में सामने आया।

चिपको पर मेरे प्रकाशित काम में हालांकि जो चीजें छूट गईं, उनमें दो बुजुर्ग गढ़वालियों से हुई मुलाकातें भी थीं। इनमें से पहली मुलाकात थी पूर्व सैनिक बी.एस. पुंडीर से, जिन्हें 1947-48 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में हिस्सा लेने के लिए वीर चक्र से सम्मानित किया गया था। हम दोनों एक शादी में हिस्सा लेने के लिए पैदल चलते हुए एक गांव से दूसरे गांव तक गए थे। युद्ध में मिली चोटों के कारण वह लंगड़ा कर चल रहे थे, लेकिन उस पहाड़ी रास्ते पर उनकी तेजी से तालमेल बिठाने में मुझे अड़चन आ रही थी, जबकि वह मुझसे तीस वर्ष बड़े थे।

चोट के बावजूद, पुंडीरजी शरीर और आत्मा में पूरी तरह दुरुस्त थे, और मैं देख सकता था कि देश की सुरक्षा करने और सेवानिवृत्ति के बाद वापस आकर उनके बीच रहने के कारण अपने साथियों के बीच उनकी कितनी इज्जत थी। मैंने वीर चक्र विजेता से उनके नायकत्व भरे अतीत के बारे में बात करने की कोशिश की, लेकिन उन्होंने मेरे प्रश्नों को नजरंदाज कर दिया और इसके बजाय मेरे शोध के बारे में बात करने लगे।

अगली मुलाकात कहीं और दिल को छूने वाली साबित हुई। एक सुबह मैंने एक पुराने स्वतंत्रता सेनानी शेर सिंह मेवाड़ के घर का रुख किया। वह छोटे कद के क्षीण से व्यक्ति थे और अस्थमा के पुराने मरीज होने के कारण लगातार खांस रहे थे। इससे उनसे लंबी बात करना मुमकिन नहीं था, लेकिन उन्होंने मुझसे कहा कि मैदानों की ओर लौटने से पहले मैं उनसे एक बार जरूर मिलकर जाऊं। दो दिन बाद जब मैं लौटा, तो उन्होंने मुझे 'टिहरी गढ़वाल का क्रांतिकारी इतिहास' शीर्षक से एक हस्तलिखित पांडुलिपि सौंपी। यह देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत चालीस पेज लंबा एक असाधारण दस्तावेज था, जिसे तैयार करने में न उनकी उम्र आड़े आई थी और न ही उनका खराब स्वास्थ। एक आगंतुक के प्रवास ने उस समय की यादें ताजा कर दीं, जब इतिहास रचा गया था और उन्होंने यानी शेर सिंह मेवाड़ ने उसके घटित होने में मदद की थी। वह 1946-47 के उस महान किसान विद्रोह का हिस्सा थे, जिसके कारण टिहरी गढ़वाल रियासत भारत संघ का हिस्सा बनी। इस आंदोलन की शुरुआत जमीन पर अधिकारों को लेकर हुई थी, मगर इसने महाराजा के खिलाफ विशाल आंदोलन का रूप ले लिया। इसका अंत राजधानी टिहरी पर कब्जे और 'आजाद पंचायत' की घोषणा के साथ हुआ। महाराजा जब अपने वाहन से महल की ओर लौट रहे थे, तब उन्हें भागीरथी नदी पर बने एक पुल पर रोक दिया गया। शेर सिंह मेवाड़ ने लिखा, उस तरफ राजा, इस तरफ प्रजा। यानी राजा का कोई वफादार नहीं बचा। दीवार पर लिखी इबारत को देखकर राजा ने तुरंत भारत संघ में विलय के दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर दिए।

शेर सिंह मेवाड़ ने मुझे जो पांडुलिपि सौंपी थी, वह अहिंसक तरीके से तानाशाही से लोकतंत्र में हस्तांतरण का एक जमीनी सैनिक द्वारा लिखा गया लेखा-जोखा था। शेर सिंह ने किसान विद्रोह और उसके नेताओं, टिहरी गढ़वाल के बाहर से इसे मिले समर्थन तथा प्रोत्साहन और महाराजा के भ्रम और समर्पण के बारे में लिखा। उल्लेखनीय है कि उन्होंने अपनी खुद की भूमिका को महत्व नहीं दिया। शेर सिंह ने अपने बारे में सिर्फ यही लिखा कि वह संदेशों को एक नेता से दूसरे तक और एक घाटी से अगली घाटी तक पहुंचाते थे।

आक्रमणकारियों को बाहर रखने वाले सैनिक और महाराजा के पतन में मदद करने वाले सत्याग्रही, इन दोनों ने ही अपनी देशभक्ति का प्रदर्शन नहीं किया। उनकी देशभक्ति शांत और शालीन किस्म की थी, न कि शोर-शराबे या धमकाने वाली। जो लोग उन्हें जानते थे या जिन्हें उनके बारे में पता था, वे उनका बहुत सम्मान करते थे, लेकिन इसके लिए उन्हें किसी से कहना नहीं पड़ा।

1980 के दशक की शुरुआत में मैं जब उनसे मिला, बी एस पुंडीर और शेर शिंह मेवाड़ को अपने शब्दों नहीं, बल्कि कृत्यों से अपनी देशभक्ति को अभिव्यक्त किए पैंतीस वर्ष हो चुके थे। अब पैंतीस वर्ष बाद भी उन मुलाकातों की स्मृतियां मेरे मन में ताजा हैं। मैं देख सकता हूं कि किस तरह से पुंडीरजी अपनी लाठी थामे संकरे पहाड़ी रास्ते पर चलते हुए मेरे प्रश्नों का गरिमा और संयम के साथ जवाब दे रहे हैं और मैं यह भी देख सकता हूं कि शेर शिंह अपनी झोपड़ी से खांसते हुए बाहर निकल रहे हैं, और उनके हाथों में पांडुलिपि है, जो वह मुझे दे रहे हैं।

उस समय इन दो देशभक्तों से मिलना मेरा सौभाग्य था, तो अभी ऐसे समय में उनके बारे में लिखना जरूरी लगा, जब तिरंगे के साथ ऐसे लोग खुद को जोड़ रहे हैं, जिन्हें बहुत कम पता है कि आखिर हमारे गणराज्य का निर्माण कैसे हुआ और उन्हें इसकी परवाह भी नहीं है।

इस चुनाव में ये भी मुद्दे

आरक्षण, क्षेत्रीय भाषायी विभेद, वंशवाद, मजहबी कट्टरता, घोटाले आदि से मतदाता परिचित हैं। रघुवीर सहाय ने लिखा था, 'व्यवस्था की बुराइयों से समझौता किए बिना सत्ता तक नहीं पहुंचा जा सकता।'

सत्रहवीं लोकसभा का चुनाव कोई सामान्य चुनाव नहीं है। यह क्षण भारत की नियति और भविष्य को तय कर देगा। जिस खतरनाक मोड़ पर देश की अस्मिता फंस गई है, जिन राष्ट्रविनाशक षड्यंत्रों के दलदल में भारत धंसता जा रहा है, जिन कुतर्कों द्वारा तथाकथित शहरी नक्सलियों, 'सत्ता लोभियों' और 'देशद्रोहियों' ने भारत माता के अंग-भंग करने के लिए दुरभिसंधि कर ली है, उन सबसे आम आदमी अनजान और उदासीन-सा लगता है।

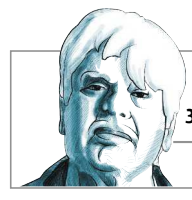

अवधेश अग्निहोत्री

यह आम मतदाता कौन है? 1951 से 2019 तक अज्ञान और सतही प्राथमिकताओं के कारण लोकसभा के 16 चुनावों से भी ऐसा लगता है कि मतदाता अधिक सीख नहीं पाया। गत कुछ वर्षों से यूरोप प्रवास के दौरान, निष्पक्ष दृष्टि से भारतीय लोकतंत्र की त्रासदी, और उस पर मंडरा रहे आसन्न संकट को देखने, पढ़ने, समझने और बरतने का मुझे अवसर मिला। कई विश्वविद्यालयों, संस्थानों में पढ़ने-पढ़ाने के दौरान एहसास हुआ कि 1947 की अधूरी आजादी के शिकार भारत के मूल में तात्कालिक परिस्थितियों के अलावा ब्रिटिश औपनिवेशक षडयंत्र से अधिक जिम्मेदार उस समय का नेतृत्व था। 15 अगस्त 1947 को त्रिचनापल्ली ऑल इंडिया रेडियो से भारतीय राष्ट्रवाद के मसीहा महान क्रांतिकारी महायोगी श्री अरविंद का राष्ट्र के नाम यह कालजयी संदेश प्रसारित हुआ था - 'भारत का विभाजन अधूरी आजादी का दुर्भाग्य है, जो मानवीय कमजोरियों के कारण घटित हुआ। यदि यह विभाजन समाप्त नहीं हुआ, तो देश अनंत काल के लिए विघटन और पतन के गर्त में चला जाएगा।' गुलामी की मानसिकता से जकड़ी जनता इस महामानव के आजादी मंत्र को समझ नहीं सकी।

इतिहास साक्षी है। चर्चिल और जिन्ना अपने षड्यंत्र में सफल रहे। भारत और पाकिस्तान। एक लोकतंत्र दूसरा फौजी तंत्र। आज भी पाकिस्तान का मुस्तकबिल वही गुलामी का है। भारत को लोकतंत्र मिला पर शीघ्र ही भारत के लोकतंत्र को अजीबो गरीब 'प्रयोगों' ने घेर लिया। जातीय आरक्षण, तुष्टीकरण, क्षेत्रीय भाषायी विभेद, राजनीति में वंशवाद, मजहबी कट्टरता, अनेक घोटाले आदि से भारतीय मतदाता पहले से परिचित है। जिसने आजाद भारत के 70 वर्ष निगल लिए। पिछली सरकारें आश्वस्त थीं कि भ्रष्टाचार के सहारे ही सत्ता हथियाई जा सकती है। प्रख्यात साहित्यकार रघुवीर सहाय की याद आ रही है। उन्होंने लिखा था, 'व्यवस्था की बुराइयों से समझौता किए बिना सत्ता तक नहीं पहुंचा जा सकता।'

अब, चुनाव के दौरान कुछ नए प्रयोग दिखाई दे रहे हैं, जो लोकतांत्रिक स्थिरता के लिए ज्यादा घातक साबित हो रहे है।

यहां कुछ प्रयोगों की चर्चा करेंगे। पहला, कश्मीर के वंशवादी नेता यथा फारूक अब्दुल्ला, महबूबा मुफ्ती पाकिस्तान के तर्ज पर पुनः दो प्रधानमंत्री, दो झंडे, दो संविधान यानी फर्जी जनमत संग्रह की मांग करने लगे। अर्थात खुले तौर पर देश को पुनः जिन्ना जैसे विभाजन की आग में झोंकने का काम। उनके खुले और छिपे समर्थन में भारत के कुछ राजनीतिक दल भी शामिल हो गए हैं। इस मानसिकता में प्रमुख विपक्षी दल ने कश्मीर में अनुच्छेद 370, 35 ए को खुला समर्थन दिया है। और उसे देशहित में समाप्त करने की योजना को रोककर क्षति पहुंचाई है। अलगाववादी ताकतों की यथास्थिति मांग को बनाए रखने की कुछ दल वकालत भी कर रहे है। साथ ही 'देशद्रोह निरोधक अधिनियम' 124-ए में भी इन विपक्षी दलों ने अपने-अपने चुनावी घोषणा पत्रों में संशोधन करने की सलाह दे दी है। और आतंक निरोधी अधिनियम को समाप्त करने या संशोधित करने की सलाह दे डाली। अर्थात आतंक ग्रस्त कश्मीर से फौजों को हटाना, उनके अधिकारों को समाप्त करने की वकालत कर डाली। यह प्रयोग देश के पुनः विभाजन का रास्ता खोल देगा। इन दलों को इस्राइल-फलस्तीन, कोरिया, वियतनाम के इतिहास से सीखना होगा।

दूसरा घातक प्रयोग राष्ट्रवाद को नकार कर आयातित साम्यवाद, छद्म मानवाधिकार, शहरी नक्सलवाद, धर्मनिरपेक्षता के बहाने मजहबी तुष्टीकरण की योजना लागू करना है। तीसरा, वंशवाद को लोकतंत्र का हिस्सा बनाना। भारत के अधिकांश राजनीतिक दल इस रोग से पीड़ित हैं। कांग्रेस, सपा, बसपा, राजद, लोजपा, दक्षिण की पार्टियां वंशवाद के प्रयोग से पीड़ित है। शासक दल भाजपा इसी का लाभ उठा रहा है। चौथा, एक नया प्रयोग आम जनता विशेष रूप से किसानों को अनंत काल के लिए भिखारी बनाए रखने का है, इसे कर्जमाफी कहते हैं। राष्ट्र के खून-पसीने की कमाई, करोड़ों करदाताओं का धन, ये राजनीतिक दल सत्ता हथियाने के लिए कर्जमाफी के नाम से लुटाते हैं। पांचवां, आबादी विस्फोट एक नया प्रयोग है, जिसके पीछे एक षड्यंत्र उजागर हुआ। विश्व में सबसे तेज गति से भारत की आबादी बढ़ी है, जो 2022 तक चीन के बराबर हो जाएगी।

यह चुनाव तुष्टीकरण से मुक्ति का पर्व है। मतदान से पहले अपनी आत्मा को टटोलने का समय है।

- विजिटिंग प्रोफेसर, वेस्टमिंस्टर यूनिवर्सिटी, लंदन